खाद्य–सम्प्रभुता और नारीवाद

एक नये क्षितिज की तलाश

देवारती रॉय चौधरी

खाद्य–सम्प्रभुता के सीमा क्षेत्र के वाद–विवाद को सामाजिक न्याय की परिधि में देखा जा सकता है। पाँच भागों में विभाजित यह लेख नारीवादी सिद्धांतकारों के नज़रिये से वैश्विक और स्थानीय स्तर पर खाद्य–सुरक्षा एवं खाद्य–सम्प्रभुता की अवधारणा को विस्तार से समझाने की कोशिश करता है। पहला हिस्सा भूमिका है जिसके अंतर्गत खाद्य–सुरक्षा एवं खाद्य–सम्प्रभुता की संकल्पना की विस्तार से चर्चा की गयी है। दूसरे हिस्से में नारीवादी विचारधारा की पुख़्ता समझ बनाने के लिए पाँच नज़रियों का प्रयोग किया गया है : नवउदारतावाद की नारीवादी समझ, सामाजिक पुनरुत्पादन यानी सोशल रीप्रोडक्शन[1] की अवधारणा, अंतर्वर्गीयता यानी इंटरसेक्शनलिटी,[2] नारीवादी राजनीतिक पारिस्थितिक–विज्ञान और 'एक दूसरी नारीवादी दुनिया'

---

[1] सोशल रीप्रोडक्शन शब्द का प्रयोग पहली बार कार्ल मार्क्स ने अपनी रचना *दास कैपिटल* में किया था. यह उनके द्वारा दर्शाए गये रीप्रोडक्शन के प्रकारों में से एक है. समाजशास्त्री क्रिस्टोफ़र बी. डूब के अनुसार 'सोशल रीप्रोडक्शन उन संरचनाओं और गतिविधियों को उजागर करता है जो सामाजिक असमानता को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचारित करती हैं.' ये प्रक्रियाएँ समाज की मौलिक संरचनाएँ बहाल रखती हैं और इन प्रक्रियाओं से ही मौजूदा उत्पादन–विधि, जिसमें एक वर्ग की दूसरे वर्गों पर प्रबलता और प्रधानता होती है, जस की तस बनी रहती है.

[2] अंतर्वर्गीयता (इंटरसेक्शनलिटी / इंटरसेक्शनल थियरी) अतिव्यापी या प्रतिच्छेदित सामाजिक पहचान और उससे जुड़े उत्पीड़न, प्रभुत्व और पक्षपात–प्रणाली का विश्लेषण करती है. इस पारिभाषिक शब्द का प्रयोग प्रथम बार अमेरिकी विद्वान किम्बरले क्रेंशा ने 1989 में किया

(अनदर वर्ल्ड फ़ेमनिज़म) शामिल है। तीसरे हिस्से में खाद्य-सुरक्षा की संकल्पना में जेण्डरवादी नज़रिये की उपस्थिति पर ग़ौर किया गया है। चौथा, खाद्य-सम्प्रभुता की संकल्पना में जेण्डरवादी उपस्थिति रेखांकित की गयी है। पाँचवें हिस्से में इस पूरी चर्चा का सार-संकलन करते हुए एक नया विकल्प खोजने का प्रयास किया गया है।

I

खाद्य एवं कृषि संगठन[3] (एफ़एओ)[4] के अनुसार, 'खाद्य-सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सभी लोगों को व्यक्तिगत, घरेलू, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर भौतिक, सामाजिक, एवं आर्थिक रूप से पर्याप्त, सुरक्षित एवं पौष्टिक भोजन मुहैया होना अनिवार्य है, ताकि सभी अपने आहार एवं इच्छानुसार एक सक्रिय और स्वस्थ जीवन का निर्वाह कर सके।' वहीं खाद्य-सम्प्रभुता की कल्पना राष्ट्रों के अधिकारों और नागरिकों की अपनी खाद्य-प्रणाली, उत्पादन-प्रणाली, खाद्य-संस्कृति, बाज़ारों और पर्यावरण पर सम्पूर्ण स्वामित्व के लिए की गयी है। इसे नवउदारतावादी कृषि और व्यवसाय के समालोचनात्मक विकल्प के तौर पर देखा जाता है।[5] इस अवधारणा के सूत्रीकरण का श्रेय खेतिहरों के अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन ला वाया कॉम्पेंसिना को जाता है। इसे एक नारे, एक घोषणापत्र और एक राजनीतिक कल्पना की तरह देखा जाता है। खाद्य-सम्प्रभुता के इस विचार ने हमारे सोच और समझ को परिमाणात्मक विचारधारा से गुणात्मक परिपेक्ष्य की ओर मोड़ा है। साथ ही इसके कारण वैश्विक नवउदारतावाद के सामाजिक प्रभाव भी उजागर हुए हैं। जिसके तहत खाद्य-सुरक्षा और खाद्य-सम्प्रभुता की विषयवस्तु में जेण्डर आयाम महत्त्वपूर्ण रूप से उभर कर आता है। इस परिप्रेक्ष्य में स्त्रियों की जगह, उनकी सोच, उनके अधिकार, उनके सिद्धांत और उनका भविष्य सब कुछ शामिल है। नवउदारतावाद और वैश्वीकरण के दौर में स्थानीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और वैश्विक स्थितियाँ एक-दूसरे से अलग नहीं रह पातीं, बल्कि परस्पर एक दूसरे से प्रभावित होती हैं। इसमें समूचे जेण्डर आयाम का अपना एक विशिष्ट और प्रासंगिक स्थान है, क्योंकि स्त्री एक इकाई के रूप में पूरी भोजन-प्रणाली का एक अभिन्न अंग है और इसके साथ समग्र रूप से जुड़ी है।

इस नारीवादी परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए हमें पहले नवउदारतावाद और उसकी नारीवादी समझ को परखना होगा। दरअसल, खाद्य-सुरक्षा का विचार भोजन संबंधी प्रथाओं, आदर्शों और मानदण्डों को नवउदारतावाद और वैश्वीकरण के इर्द-गिर्द ही बुनता है, वहीं खाद्य-सम्प्रभुता इसे चुनौती देते हुए 'वैश्विक' की जगह 'स्थानीय' को मान्यता देती है। और, जैसे ही हम स्थानीय की बात करते हैं, वैसे ही जेण्डर का आयाम और भी प्रखर हो जाता है।

था. यह धारणा तो पहले से ही चली आ रही थी, लेकिन क्रेंशा ने इससे नया जामा पहनाया है. नारीवादी अवधारणा में इस सिद्धांत का मानना है कि जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक श्रेणियाँ जैसे जेण्डर, जाति, वर्ण, श्रेणी, योग्यता, धर्म, राष्ट्रीयता आदि, एक साथ कई स्तर पर परस्पर प्रभाव डालती हैं और इस तरह स्त्रियों के लिए कई स्तर पर दमन और अधीनता की संरचनाएँ उत्पन्न करती हैं। यह सिद्धांत इन तत्त्वों का, इन्हीं स्तरों पर विश्लेषण करता है ताकि स्त्रियों के साथ बहुआयामी स्तर पर होने वाले सुनियोजित अन्याय और सामाजिक भेदभाव को समझ कर उससे निबटा जा सके.

[3] फ़ूड ऐंड एग्रीकल्चरल आर्गनाइज़ेशन (एफ़एओ) संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विशिष्ट एजेंसी है जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खाद्य-सुरक्षा और भुखमरी ख़त्म करने के लिए काम करती है. सभी लोगों के लिए खाद्य-सुरक्षा हासिल करना इस संस्था का मुख्य उद्देश्य है. इसके उद्देश्यों में भुखमरी ख़त्म करना, खाद्य-असुरक्षा और कुपोषण समाप्त करना, ग़रीबी उन्मूलन, सामाजिक और आर्थिक विकास, प्राकृतिक संसाधनों का सही उपयोग और उनका वहनीय प्रबंधन प्रमुख है. इस अंतर-सरकारी संगठन का मुख्यालय रोम, इटली में है. अभी 130 देश इसके सदस्य हैं.

[4] फ़ूड ऐंड एग्रीकल्चरल आर्गनाइज़ेशन, (1996).

[5] हान्ना विटमेन, ऐने डेस्मैराइज़ और नेटी वीब (सं.)(2012).

II
नारीवादी सिद्धांतों का हस्तक्षेप

नैंसी फ्रेज़र[6] एवं अन्य नारीवादी विद्वानों ने नवउदारतावाद और नारीवाद की दूसरी लहर[7] की परस्पर घनिष्ठता को विश्लेषणात्मक कसौटियों पर कसा है। साथ ही उन्होंने वैश्विक मुद्दों, मसलन खाद्य-सुरक्षा व सामाजिक न्याय के लिए एक परिवर्तित और मौलिक नारीवादी दृष्टिकोण की माँग भी की है।

नारीवाद की दूसरी लहर का केंद्र-बिंदु सदैव स्त्रियों की आजीविका एवं आय से जुड़ा रहा है। इसके अंतर्गत नवउदारतावाद को स्त्रियों की उन्नति व सशक्तीकरण के वाहक के रूप में देखा गया है। पहले नवउदारतावाद और पूँजीवादी विचारधारा के भीतर स्त्रियों को हाशिये पर रखा गया था। परंतु आय व सम्पन्नता में वृद्धि के कारण अब पूँजीवाद अपना लचीला रुख़ दिखा पाने में समर्थ हुआ है। परिणामस्वरूप पूँजीवाद को न्यायसंगत व्यवस्था के रूप में मान्यता दी जाने लगी है और इसके तहत स्त्रियों को भी एक पेशेवर व कुशल श्रमिक तबक़े के रूप में पहचान मिलने की शुरुआत हुई है। आमदनी के साथ उन्हें अन्य सुविधाएँ भी मिलने लगी हैं। ज़ाहिर है कि यह सब केवल आय स्रोत से जुड़ा मामला नहीं, बल्कि नैतिक और व्यक्तिगत सशक्तीकरण से भी जुड़ा हुआ है। इस तरह जहाँ स्त्रियों ने 'ग्लास सीलिंग'[8] को निरंतर तोड़ा ही, वहीं वे अस्थायी रूप से खेतों में या खाद्य-प्रसंस्करण की पूरी प्रक्रियाओं से लाभान्वित होने लगी हैं। लघु व कुटीर उद्योगों के लिए दिया जाने वाला क़र्ज़ भी स्त्री-सशक्तीकरण के लिए आवश्यक आय के सृजन और पूँजी के संचय से जुड़ा है।

फ्रेज़र ने नारीवाद की दूसरी लहर की आलोचना करते हुए कहा है कि यह चरण स्त्रियों पर हो रहे बेइंतिहा ज़ुल्मों और प्रजनन संबंधी विषयवस्तु पर ज़्यादा ध्यान देता है, लेकिन इसके लिए आर्थिक न्याय और ग़रीबी उन्मूलन जैसे मुद्दे बहुत कम महत्त्वपूर्ण हैं। उनका तर्क है कि जिस तरह नवउदारतावाद विक्षोभ का सामना करने लगा है, उसी तरह नारीवाद को भी केवल पूँजीवादी व्यवस्था से मिले दिहाड़ी श्रमिक की हैसियत से गौरवान्वित होने की बजाय स्त्रियों के कई अपरिभाषित घरेलू कार्यों, जिन्हें महत्त्व नहीं दिया जाता है, उन पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। फ्रेज़र का कहना है कि इस तरह के नारीवादी और नवउदारतावादी दृष्टिकोण के साथ समस्या स्त्रियों के हितों से जुड़े मुद्दों व उसके सामूहिक संघर्ष की अनदेखा करने की है। जैसा कि खाद्य-सम्प्रभुता के प्रत्यय की व्याख्याता विद्वानों[9] ने दिखाया है कि समकालीन नारीवाद और नवउदारतावाद का मिला-जुला दृष्टिकोण विशेष रूप से औद्योगिक घरानों व निजी फ़र्मों को हर सामाजिक मुद्दे के हल के रूप में पेश करता है। उनके मतानुसार नारीवादी विद्वानों को अन्य समकालीन विचारों से तालमेल बनाना चाहिए ताकि एक नयी सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था स्थापित की जा सके, और हर अन्याय का आकलन एक ठोस सार्वभौम पैमाने पर करके इससे जुड़े उचित क़दम उठाए जा सकें। इस तरह की अवधारणा में वैश्विक अन्यायों से निपटने की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

कुछ विचारकों का मानना है कि फ़ेमिनिस्ट विमर्श ने ही युगांतकारी बदलाव की अगुआई की है। फ़ेमिनिस्ट आंदोलन में बहुत हाल के विमर्शों को रेखांकित करते-करते हुए लिन फ़िलिप्स और

---

[6] नैंसी फ्रेज़र (2009).

[7] नारीवादी आंदोलन के विकास में चार चरणों की चर्चा की जाती है. प्रथम चरण की शुरुआत साठ दशकों में हुई. यह चरण अमेरिका से होते हुए यूरोप तक पहुँचा. इसमें स्त्रियों के मताधिकार पर मुख्य रूप से ज़ोर दिया गया. दूसरे चरण की शुरुआत अस्सी के दशकों में हुई जो यूरोप से होते हुए एशिया और अन्य देशों तक पहुँचा. इस पहल में लैंगिकता, प्रजनन से जुड़े अधिकार, पारिवारिक और कार्यस्थल के मुद्दे शामिल किये गये. इन दशकों में घरेलू हिंसा और वैवाहिक बलात्कार जैसे गम्भीर विषयों को उठाया गया.

[8] ग्लास सीलिंग उन अनदेखी और अभेद्य रुकावटों को कहते हैं जो स्त्रियों और अल्पसंख्यकों को कॉरपोरेट संस्थानों में पदोन्नति से रोकती हैं, भले ही उनकी दक्षता, कार्यकुशलता, योग्यता कितनी ही क्यों न हो.

[9] हान्ना विटमेन, ऐने डेस्मैराइज़ और नेटी वीब (2010).

सैली कोल[10] के अनुसार लातीनी अमेरिकी फ़ेमिनिस्ट नज़रियों के बीच के अंतर का विश्लेषण बहुत अहम है। उनके अनुसार पहला नज़रिया 'यूएन ऑरबिट फ़ेमिनिज़म', और दूसरा 'अनअदर वर्ल्ड फ़ेमिनिज़म' है। 'यूएन ऑरबिट फ़ेमिनिज़म' की समझ रखने वाले जेण्डर को पुरुषप्रधान संस्थानों और सामाजिक आंदोलन की कार्यसूची में स्थान दिलाने की भरसक कोशिश करते हैं। संयुक्त राष्ट्र व अन्य संस्थानों में कार्यरत नारीवाद-समर्थकों पर भी कार्य, कौशल व लक्ष्य-प्राप्ति का अतिरिक्त दबाव होता है। इसके विपरीत 'अनअदर वर्ल्ड फ़ेमिनिज़म' मॉडल के समर्थक प्रसिद्ध स्त्री-समूहों के साथ एकजुटता के साथ काम काम कर रहे हैं। इसके अंतर्गत निजी प्रबंधन व उसके तामझाम पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। इस तरह के नारीवादी ज्ञान और समझ का प्रयोग अन्य क्षेत्रों में पुरुषवादी प्रधानता को चुनौती देने के लिए करते हैं। इसके साथ-साथ वे स्त्रियों द्वारा बनाई गयी वस्तुओं व सेवाओं और उनके निजी-पारिवारिक क्षेत्र के लिए नये विकल्प सुझाते हैं।

एक और उभरता हुआ नारीवादी दृष्टिकोण 'अंतर्वर्गीयता' हमें खाद्य-सुरक्षा और खाद्य-सम्प्रभुता का विमर्श समझने में सहायता करता है। अंतर्वर्गीयता मुख्य रूप से 'जेण्डर, जाति, वर्ण, श्रेणी, योग्यता, धर्म, राष्ट्रीयता आदि से उत्पन्न अतिव्यापी और गतिमान असमानताओं का विश्लेषण करती है।'[11] यह नज़रिया नारीवादी समझ-बूझ और क्रिटिकल रेस-स्टडी के संयोग से बना है। इसका उद्‌भव अमेरिका में अफ्रो-अमेरिकी स्त्रियों के नस्लभेदी शोषण का मुक़ाबला करने के लिए हुआ था। इसका उपयोग आज नारीवादी समझ में, क्रिटिकल रेस-स्टडीज़[12] में और अन्य शाखाओं में एक सिद्धांत, विधि और कार्य-पद्धति के रूप में किया जाता है। इसके माध्यम से जेण्डर, जाति, वर्ण, श्रेणी, योग्यता, धर्म व राष्ट्रीयता आदि के दायरे में अतिव्यापी शोषण-तंत्र की समझ बनाई जाती है। इसका दायरा पहले पहचान की राजनीति तक सीमित था लेकिन अब राजनीतिक और संरचनात्मक असमानताओं के विश्लेषण भी इसके दायरे में शामिल हो चुके हैं।[13] अंतर्वर्गीयता के अंतर्गत समकालीन समय में पारिवारिक व राज्य-व्यवस्था से जुड़े मुद्दों के साथ-साथ दो मुल्कों के बीच के संबंधों व उससे उत्पन्न असमानताओं में जेण्डरवादी पक्ष को भी दर्शाया गया है।[14] वृषाली पाटिल ने विस्तार से बताया है कि 'हमें एक ही वक़्त पर विभिन्न प्रक्रियाओं, विभिन्न स्तरों को समझना होगा जो विशिष्ट स्थानीय परिस्थितियाँ से जुड़े हों और जिनका सीधा संबंध जेण्डर से हो। अंतर्वर्गीयता के संदर्भ में पारिवारिक स्थिति सिर्फ़ उस तरह नज़र आएगी जैसी वह दिखती है। हमें कोशिश करनी चाहिए की यह धारणा फिर से कुछ इस तरह स्थापित हो जिसमें स्थानीय या वैश्विक विमर्श बिल्कुल अलग-अलग विभाजित न रहें, बल्कि प्रत्येक स्थानीय पहलू को वैश्विक-प्रणाली के संदर्भ में देखा और समझा जा सके।

III

खाद्य-सुरक्षा एवं खाद्य-सम्प्रभुता के जेण्डर और नारीवादी मॉडल : प्रभावकारी नारीवादी दृष्टिकोण

1993 में खाद्य व कृषि संगठन (एफएओ) ने बहुचर्चित विश्व खाद्य सम्मेलन में खाद्य-सुरक्षा की परिभाषा दी। इसके अनुसार 'खाद्य-सुरक्षा वह अवस्था है जब व्यक्तिगत, घरेलू, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर सभी लोगों के पास, हर वक़्त, खाद्य सामग्री उपलब्ध हो, आर्थिक रूप से खाद्य

---

[10] लिन फ़िलिप्स और सैली कोल (2009).

[11] नीना लिके (2011).

[12] क्रिटिकल रेस स्टडीज़ यानी समाज और संस्कृति का समालोचनात्मक विश्लेषण जिसमें वर्ग, जाति, वंश, धर्म, विधि, शक्ति आदि पर नज़र डाली जाती है.

[13] सुमी चो, किम्बरले विल्लीएम्स क्रेंशा और लेस्ली मैक्कॉल (2013).

[14] वृषाली पाटिल (2013).

सामग्री तक लोगों की पहुँच हो, सभी को पर्याप्त, सुरक्षित और पौष्टिक आहार मिले जो उनके दैनिक आहार की ज़रूरतों और स्वाद के अनुरूप हो, एवं जो एक सक्रिय और स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक हो।' वैश्विक उत्पादन से आगे बढ़ कर खाद्य-सुरक्षा के नये आयामों का विश्लेषण भी किया जा रहा है। लेकिन मेडेलाइन फ़ेयरबेइर्न[15] ने इस बात की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है कि इस तरह की परिभाषा और समझ बाज़ार की उपस्थिति और हस्तक्षेप को राज्य के मुक़ाबले ज़्यादा तरजीह देती है और इस प्रकार यह सीधे-सीधे नवउदारतावादी सिद्धांतों की संगति में बैठती है। खाद्य-सुरक्षा के चार मूलभूत आधार हैं : उपलब्धता, सुलभता, उपयोगिता और स्थिरता।[16] इन चारों आधारों को जेण्डरवादी चश्मे से देखा जा सकता है। नारीवाद समर्थकों, जो ख़ास कर इन संस्थाओं में काम करते हैं, की पूरी कोशिश होती है कि जेण्डर से जुड़े मुद्दों को पहचाना जाए एवं नीतियों से उनका जुड़ाव हो सके। लेकिन अभी भी कार्यान्वयन के स्तर पर साफ़ कमी दिखाई पड़ती है। अब मैं यहाँ बताने की कोशिश करूँगी की कि खाद्य-सुरक्षा के सभी आधारों को जेण्डर के नज़रिये से किस तरह देखा जा सकता है।

उपलब्धता का आयाम

खाद्य-उपलब्धता का अर्थ पर्याप्त मात्रा में खाद्य सामग्रियों के सुलभ होने से है ताकि लोगों के दैनिक आहार की आपूर्ति हो सके। इसका आकलन बड़े स्तरों, जैसे वैश्विक, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, पर कुल लागत और कुल उपज के आधार पर होता है। खाद्य-उपलब्धता के आँकड़े राष्ट्रीय स्तर पर ही आँके जाते हैं, और इनमें घरेलू उत्पाद और कृषि आयात के आँकड़े शामिल किये जाते हैं। व्यापक रूप से इस आयाम के अंतर्गत खाद्य-उपलब्धता में जेण्डरवादी असमानता दिखाई पड़ती है। जबकि सच्चाई यह है कि विश्व के कुल अनाज उत्पादन का लगभग चालीस फ़ीसदी स्त्री-कृषकों द्वारा उगाया जाता है। स्त्रियों से उनकी ज़मीन, आर्थिक सहायता, कृषि से जुड़े ज्ञान और प्रौद्योगिकी आदि में भेदभाव किया जाता है। शोधकर्ता और नारीवादी नुमाइंदों और नीति-निर्माताओं का मानना है कि पुरुष और स्त्रियों के बीच असमानताओं को दूर करने के परिणामस्वरूप स्वाभाविक रूप से कृषि-क्षेत्र में भी स्त्रियों का सशक्तीकरण होगा। ऐसी महत्त्वपूर्ण नीतियाँ और योजनाएँ बनाई जाएँगी जिनके माध्यम से स्त्रियों को ज़मीन और अन्य महत्त्वपूर्ण संसाधन मुहैया हो सकेंगे। इन संसाधनों से उनका वास्तविक सशक्तीकरण होता है क्योंकि उनमें वह क्षमता है कि वे अनाज का दुगुना उत्पादन कर सकें। एफएओ [17] के एक आकलन के अनुसार अगर सभी संसाधनों में पुरुषों के बराबर ही स्त्रियों की समान हक़दारी हो तो कृषि-उत्पाद 20 से 30 फ़ीसदी बढ़ सकता है जिससे भूखे लोगों को बड़े पैमाने पर भोजन उपलब्ध हो सकता है। अनेक शोधों में यह पाया गया है कि स्त्री-कृषकों की कुल उपज पुरुष-कृषकों की तुलना में कम होती है। लेकिन इन शोधों में साफ़ तौर पर यह भी उभर कर आता है कि कम उत्पाद का सीधा-सीधा संबध सिर्फ़ स्त्रियों के कम लागत और असमान संसाधनों के प्रयोग तक सीमित है। स्त्रियों के पास अपर्याप्त समय और कम हक़दारी की वजह से कुल उत्पाद पर इसका प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार के कई शोध उन जगहों पर हुए हैं जहाँ अलग-अलग ज़मीनों पर स्त्री और पुरुष अपना अपना खेत जोतते है। मेरे पीएचडी शोध का क्षेत्र बिहार का अररिया ज़िला है।

अररिया ज़िला मुख्य रूप से ग्रामीण इलाक़ा है जहाँ तक़रीबन 94 फ़ीसदी आबादी ग्रामीण इलाक़ों

---

[15] मेडेलाइन फ़ेयरबेइर्न (2012).
[16] फ़ूड ऐंड एग्रीकल्चरल आर्गनाइज़ेशन (2011).
[17] फ़ूड ऐंड एग्रीकल्चरल आर्गनाइज़ेशन (2011).

में रहती है। नौ तहसील में से केवल दो, फ़ारबिसगंज और अररिया शहरी क्षेत्र है। बिहार के उत्तरी क्षेत्र में स्थित ज़िला अररिया काफ़ी पिछड़ा और अविकसित है। शोध के लिए औचक ढंग से चार पंचायतों को चुना गया है। इन चार सैंपल पंचायतों में से सामाजिक, आर्थिक एवं जाति जनगणना के आधार पर चार गाँवों को चुना गया। ये हैं : रघुनाथपुर (उत्तर), हसनपुर, अचरा और डुमरिया। शोध के संदर्भ में हरेक गाँव से पचास घरों का इंटरव्यू किया गया। इस तरह कुल दो सौ घरों के साक्षात्कार लिए गये और सामूहिक चर्चाएँ की गयीं ताकि खाद्य-सुरक्षा, राशन और खाद्य-सम्प्रभुता पर एक समझ बनाईं जा सके।[18] खाद्य-सुरक्षा और राशन से जुड़े घरों का कवरेज इस प्रकार है :

तालिका-1

गाँव	ग़रीबी की रेखा से नीचे/ प्राथमिक घर	अंत्योदय अन्न योजना	कुल
रघुनाथपुर (उत्तर)	31	19	50
हसनपुर	32	18	50
अचरा	34	16	50
डुमरिया	27	23	50
कुल	124	17	200

स्रोत : फ़ील्ड-आधारित। ये सैम्पल दर्शाते हैं कि राशन के संदर्भ में भी आबादी प्रचुर मात्रा में जन वितरण-प्रणाली पर निर्भर करती है।

तालिका-2

पात्र परिवारों की श्रेणी	खाद्यान्न प्रतिमाह	क़ीमत प्रति किलो[19]
अंत्योदय	35 किलो प्रति परिवार	गेहूँ दो रुपये प्रति किलो, मोटा अनाज एक रुपये प्रति किलो
प्राथमिक परिवार	पाँच किलो प्रति व्यक्ति	चावल तीन रुपये प्रति किलो

स्रोत : फ़ील्ड-आधारित। ये सैम्पल दर्शाते हैं कि राशन के संदर्भ में भी आबादी प्रचुर मात्रा में जन वितरण-प्रणाली पर निर्भर करती है।

अररिया क्षेत्र मुख्य रूप से कृषि प्रधान है जहाँ 66 फ़ीसदी आबादी खेतिहर मज़दूरों की है जो या तो अपनी या दूसरे की ज़मीन पर काम करते हैं। स्त्री-कृषकों की संख्या भी कुल खेतिहर-मज़दूरों के तक़रीबन 47.8 फ़ीसदी है।

यहाँ स्त्रियों को ज़मीन पर अलग से मालिकाने का अधिकार नहीं है इसलिए वे पारिवारिक ज़मीन पर ही खेत जोतती हैं, जिसका मालिक पति या पिता होता है। इससे परेशानी और असमानताएँ दुगनी हो जाती है, क्योंकि पहले तो उस ज़मीन पर उनका सीधे कोई मालिकाना हक़ है ही नहीं, दूसरा उनकी मेहनत के बल पर हुई फ़सल पर भी उसका कोई हक़ नहीं होता। इसके अलावा फ़सल से मिली क़ीमत से भी वे वंचित रहती हैं। राष्ट्रीय खाद्य-सुरक्षा क़ानून ने भी स्त्री-कृषकों के हक़ के मामलों में चुप्पी साध रखी है, जबकि भोजन के अधिकार के संदर्भ में यह काफ़ी महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि स्त्रियों की हक़दारी खाद्यान्न और भोजन पर एक सामान हो और क़ानूनन परिभाषित हो।

---

[18] बिहार में ग़रीबी रेखा से ऊपर (अबव पॉवर्टी लाइन) आबंटन राष्ट्रीय खाद्य-सुरक्षा क़ानून के तहत शून्य है. ग़ौरतलब है कि दो सौ घरों में से कोई भी ग़रीबी रेखा के ऊपर या अप्राथमिक परिवार नहीं है.

[19] क़ीमतें तीन सालों के लिए तय हैं और इस अवधि के बाद इनका पुनरीक्षण होगा.

रघुनाथपुर गाँव, अररिया ज़िला : सगुनिया देवी, बिजली देवी, सुमिता देवी और मीना देवी

'किसान या खेतिहर मज़दूर' एक सामान्य और व्यापक शब्द है जिसका अर्थ क़तई भी एक पुरुष मज़दूर नहीं होना चाहिए। लेकिन विडम्बना है कि जेण्डर के आधार पर इस शब्द का प्रयोग पुरुषों की तरफ़दारी के लिए किया जाता है और अनाज-उत्पादन में महिलाओं की भूमिका को नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। इसके पीछे काफ़ी हद तक यह समझ काम करती है कि महिलाओं द्वारा खेत पर किया गया काम उनके घर के काम का ही एक हिस्सा है तो उसे अलग से मान्यता देने या उसके परिश्रम को समझने की कोई ज़रूरत ही नहीं है।

लेकिन इसके साथ ही मेरी समझ यह कहती है कि खेती को घरेलू काम का ही एक विस्तार मानना कोई आम समझ नहीं है। दरअसल, यह एक रणनीति है ताकि महिला कृषक को मान्यता प्रदान करने, मालिकाना हक़ या मेहनताना देने की ज़िम्मेदारी से बचा जा सके। और अगर हम उसे कोई भी हक़, अधिकार या मेहनताना नहीं दे रहे हैं तो उसे आत्मनिर्भर नहीं बना रहे हैं, उसे वह समानता नहीं दे रहे हैं जिसकी वह हक़दार है। जेण्डर असमानता और असमान पुरुषवादी शक्ति व्यवस्था समाज में बनी रहेगी और महिलाओं का शोषण होता रहेगा।

इन स्त्रियों के पास अपनी पहचान, आय, व अन्य अधिकारों को माँगने का कोई हक़ नहीं है। वे अन्य अनगिनत असमानताओं से भी निरंतर जूझती रहती हैं। जैसे, संसाधनों का असमान प्रयोग, कृषि से जुड़े साधनों की कमी, घर व खेत-खलिहान दोनों जगह बराबर ज़िम्मेदारी का बोझ आदि।

शोध की शुरुआत से ही एक मुख्य मुद्दा स्पष्ट और प्रत्यक्ष था कि परिस्थिति महिलाओं के लिए असमान और मुश्किल है और उनकी समस्याएँ भी भिन्न है। महिला कृषकों के एक समूह ने एक सुर में बताया की जो ज़मीन उनके पास है उससे उनका गुज़ारा असम्भव है। उससे उपजे अन्न से वे अपने परिवार का पेट नहीं भर पाती हैं। इसीलिए उनमें से अधिकतर बड़े ज़मींदारों के खेतों पर काम करती है मगर उन्हें मेहनताना काफ़ी कम मिलता है। सबसे मुश्किल बात यह है कि यह मज़दूरी सामयिक या मौसमी होती है और इस वजह से उनकी आय अनियमित रहती है। इसी वजह से वह कभी भी निश्चिंत नहीं रह पाती हैं कि कल काम होगा या नहीं या मिलेगा भी तो किस तरह का काम मिलेगा।

47 वर्षीय बसंती देवी ने बताया कि उनके पति का देहांत हो गया है और उनकी चार बेटी और एक बेटा है। सभी बच्चे छोटे हैं और स्कूल जाते हैं। एक बेटी उनके साथ काम पर आती है। उनके पास थोड़ी

सी ज़मीन थी मगर पति के देहांत के बाद उन्हें पता चला कि उनके पति ने ज़मीन पहले ही बेच दी थी। यहाँ ग़ौर करने की बात यह है कि ज़मीन बेचने की बात उन्हें कभी मालूम ही नहीं हुई। कुछ दिन पहले तक वह एक ज़मींदार के यहाँ काम करती थीं, मगर अब उसने ज़मीन बेच दी है और वहाँ एक गोदाम बन रहा है। बसंती को समझ नहीं आ रहा है कि वह अब अपने परिवार का भरण-पोषण कैसे करेगी।

मुझे अपने फ़ील्ड वर्क के दौरान नरपतगंज में सुगनी देवी से बात करने का मौक़ा मिला। उन्होंने बताया कि स्त्री-कृषक पुरुषों की तुलना में अधिक विविध फ़सलें लगाती हैं और उनका ज़्यादा रुझान उन फ़सलों पर होता है जिनका घरेलू और स्थानीय आहार के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसलिए हो सकता है कि उनका उत्पादन कम और आय सीमित हो, लेकिन जो फ़सलें वे उपजाती हैं और जो पशुपालन करती हैं वह आहार की विविधता व पौष्टिकता में इज़ाफ़ा ही करता है।

सुलभता का आयाम

खाद्य सामग्री तक लोगों की पहुँच का आकलन पुरज़ोर तरीक़े से घरेलू स्तर पर ही होता है और यह लोगों की योग्यता पर निर्भर करता है कि वे पर्याप्त संसाधनों को फ़सल उपजाने, बाज़ार से ख़रीदने अथवा किसी सरकारी योजना के तहत पाने में कितने सक्षम हैं। जहाँ तक स्त्रियों का सवाल है वे अधिकतर सभी देशों में और मेरे अनुसंधान-क्षेत्र में भी विशेष रूप से उन फ़सलों और पशुपालन पर ध्यान देती हैं जिसका घरेलू उपयोग सीधे तौर पर हो सकता हो। जबकि पुरुष ऐसी फ़सलें उपजाते हैं जिनका बाज़ार भाव अधिक होता है।

फ़ील्ड वर्क करते हुए एक झलक इस बात की भी दिखी कि बड़े किसानों और ज़मींदारों का उत्साह नक़दी फ़सल के लिए ज़्यादा है। वह नक़दी फसल उत्पादक को ज़मीन लीज़ पर सीधे बेच रहे हैं। महिला किसानों और मज़दूरों को ज़्यादा नुक़सान हो रहा है। दरअसल, जल, ज़मीन, जंगल के साथ-साथ श्रम व ज्ञान के संबंध में जेण्डर असमानताएँ स्पष्टता से दिखाई पड़ती हैं।

अचरा गाँव में कई स्त्रियों ने बताया कि जब छँटनी की नौबत आती है तो सबसे पहले उन्हें ही काम से निकाला जाता है। जब कुछ महिलाओं ने पुरुषों के समान मज़दूरी न मिलने के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई तो उन्हें काम से निकाल दिया गया।

यह स्थिति घरेलू स्तर पर भी साफ़ दिखाई पड़ती है। घर के भीतर भोजन पहले पुरुष सदस्यों को ही परोसा जाता है। आख़िरकार वह पुरुष है और श्रम के मुताबिक़ खाना ही समाज का नियम। स्त्रियों द्वारा किया गया श्रम, बहाया गया पसीना शायद श्रम की परिभाषा में फ़िट नहीं बैठता। ज़ाहिरा तौर पर जैव विविधता (जल, जंगल, और ज़मीन) के संदर्भ में स्त्रियों व पुरुषों की पहुँच, उनके तरीक़ों व ज्ञान के विमर्श में ख़ासा अंतर देखा जा सकता है। खेतों में उपजी फ़सलों पर भी स्त्रियों की कोई हक़दारी नहीं है। बावजूद इसके कि बीज संरक्षण और मिट्टी की परख के मामले में महिलाओं का ज्ञान अद्‌भुत और काफ़ी सटीक बैठता है। मौसमी फसल और सब्ज़ियों की पहचान तो मैंने अपने शोध के दौरान इन महिलाओं के बीच रह कर सीखी है। इसका यह अर्थ क़तई नहीं है पुरुषों को इन बातों की जानकारी नहीं है, मगर महिलाओं के इस ज्ञान और समझ का सम्मान किया जाना चाहिए। उनके अस्तित्व की यह एक सशक्त पहचान है। फ़सलों के अवशिष्टों का पुन: खाद के तौर पर इस्तेमाल, जैविक खाद और कुदरती खेती में ही उनकी पहचान ज़रूरी है। जैविक खेती की दिशा में काफ़ी काम करना है। ग़ौरतलब है कि भोजन संबंधी ज़रूरतों को पूरा करने, अभाव के समय में भी भोजन जुटाने आदि कार्यों में स्त्रियों की भूमिका को अब तक उपेक्षित रखा गया है। जबकि खाद्य प्रसंस्करण की पूरी प्रणाली में वे ही अहम भूमिका निभाती हैं। पारम्परिक श्रम-विभाजन में आम तौर पर जेण्डर भूमिकाओं के संदर्भ में स्त्रियों को ही चूल्हा-चौका के काम में लगाया जाता है।

अत्यधिक काम करने के बावजूद पुरुषों के मुक़ाबले भोजन पर महिलाओं का बहुत कम अधिकार

होता है। शोध के दौरान मैंने यह पाया कि उस घर में भी जहाँ पर्याप्त मात्रा में भोजन उपलब्ध रहता है, वहाँ भी सभी सदस्यों को समान भोजन नहीं मिलता। ग़ौर करने की बात यह है कि भोजन की अनुप्लब्धता औरतों और बच्चियों के हिस्से में ही आती है। हम जानते हैं कि स्त्रियों की आहार-पोषण की स्थिति सीधे तौर पर बच्चों की पौष्टिकता से जुड़ी रहती है। इन अनुसंधानों ने दिखाया है कि स्त्रियों के सशक्तीकरण से बच्चों की पौष्टिकता में भी आधारभूत बदलाव आता है।[20] 36 विकासशील देशों में किये गये एक अध्ययन के अनुसार स्त्रियों को अच्छा भोजन मिलने का सीधा और सकारात्मक प्रभाव बच्चों के पोषक तत्त्वों के स्तर पर होता है। इस अध्ययन में पुरुषों के सापेक्ष स्त्रियों के निर्णय लेने की क्षमता और जेण्डर-समानता को आँका गया है। दक्षिण एशिया के देशों में, जहाँ कुपोषण सबसे ज़्यादा है, में भी स्त्रियों की स्थिति का बड़ा प्रभाव बच्चों के पोषण पर पड़ता है। इसका एक कारण यह भी है कि स्त्रियों के पास जागरूकता, कुशल निर्णय क्षमता व इस संदर्भ में पर्याप्त ज्ञान होता है। मेरे शोध-क्षेत्र अररिया ज़िला में लागू खाद्य-सुरक्षा क़ानूनों के तहत घर की वयस्क स्त्री को ही घर के मुखिया के तौर पर माना गया है और राशन लाभार्थी के रूप में भी प्रथम पात्रता स्त्री को ही दी गयी है।

शोध के दौरान, किर्किचियाँ गाँव की बिजली देवी और हसनपुर गाँव की अफ़साना ख़ातून ने समझाया कि किस तरह पात्रता मिलने की वजह से आज राशन से मिलने वाले आहार को लेकर वे सब काफ़ी निश्चिंत हैं। वे इस बात से सुरक्षित महसूस करती हैं कि राशन की उपलब्धता के कारण घर में चूल्हा जलता रहेगा। हक़दारी उनके पास होने के वजह से उन्हें ख़ुद के सशक्त होने का आभास भी होता है और वे भोजन-निर्माण की प्रक्रिया से लगाव महसूस करती हैं।

उपयोगिता के आयाम

खाद्य-सुरक्षा का तीसरा आयाम खाद्य-उपयोगिता है, जिसका अर्थ एक सटीक पौष्टिक और दैनिक आहार के सेवन से जुड़ा हुआ है। सिर्फ़ कैलॅरी से दैनिक आहार को मापना सही प्रतीत नहीं होता। दरअसल, यह आयाम खाने की गुणवत्ता, मात्रा, सुरक्षा और साफ़-सफ़ाई की बात भी करता है। यूनिसेफ़ ने बच्चों की देखभाल और खाने-पीने में साफ़-सफ़ाई पर ज़ोर दिया है। यह भी एक पूर्वग्रहग्रस्त जेण्डरवादी प्रथा को दिखाता है जहाँ असमान जेण्डर समीकरण घर और समाज में स्त्री की योग्यताओं में रुकावट डालता है। कई वैज्ञानिक शोधों से यह सत्यापित हुआ है कि अभिभावकों की शिक्षा, समझ-बूझ एवं मूलत: स्त्रियों की क्षमता, घर व समाज में जेण्डर समानता व सकारात्मक निर्णय-प्रथा आदि बच्चों के सर्वांगीण विकास में सहायक सिद्ध होती हैं।[21] फ़ील्ड वर्क करते समय यह बात साफ़ नज़र आयी कि स्त्रियों में काफ़ी हद तक जागरूकता है। उन्हें यह पता है कि साफ़, सुरक्षित, पौष्टिक आहार की ज़रूरत कितनी है। पैसों की तंगी की वजह से पौष्टिकता के साथ-साथ साफ़-सफ़ाई को भी काफ़ी हद तक ताक पर रखा गया है। पीने के लिए साफ़ पानी का अभाव और निकासी की लचर व्यवस्था के कारण घरों के आसपास कूड़े कचरे की गंदगी और बढ़ रही है।

स्थिरता का आयाम

चौथा और महत्त्वपूर्ण आयाम स्थिरता है जिसका अर्थ है भोजन-साम्रगी की सतत आपूर्ति करना। यह स्थिरता खाद्यान्न के उचित भण्डारण, सामान की क़ीमतों में स्थिरता, लोगों की क्रयशक्ति एवं आपातकाल के समय विशेष प्रबंधन की स्थिति पर निर्भर करता है। क़ीमतों में उछाल या आपूर्ति में

[20] जे.आर. बहरमनंद और बी.एएल. वोल्फ़े (1984), ई. कैनेडी और पी.पीटर्स (1992), डी. थॉमस (1994)

[21] ओलिविएर एकर और क्लेमेन्स ब्रेइसिंगेर (2012), पी. ग्लेव्वे (1999), आर.डी. सेम्बा, एस.दी. पी, के. सुन, म. सारी, एन.अख़्तर और एम.डब्ल्यू. ब्लोएम (2008), जे.आर. बहरमन और ए.बी. देओलालिकर (1990).

कमी आदि से ग़रीबों, विशेष रूप से स्त्रियों पर इसका अधिक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि पुरुषों की तुलना में उनकी क्रय क्षमता काफ़ी कम होती है। वहीं दूसरी तरफ़ बढ़ती महँगाई व राशन की निरंतर उपलब्धता का अभाव उनकी परेशानियों को और बढ़ाता है। शोध के दौरान कई बार यह बात सुनने को मिली कि 'राशन तो है मगर वह निश्चित समय में नहीं पहुँच पाता। कभी-कभार तो दो-तीन महीने में एक बार मिलता है, और बाज़ार क़ीमतों पर इसे ख़रीदना बूते से बाहर होता है।' ऐसे में स्त्रियों को ख़ासी परेशानी होती है कि इन परिस्थितियों का मुक़ाबला कैसे किया जाये।

IV

नारीवादी खाद्य-सम्प्रभुता का अवलोकन

नब्बे के दशक के मध्य में खाद्य-सम्प्रभुता के सिद्धांत की उत्पत्ति ला वाया काम्पेंसिना[22] से खाद्य-सुरक्षा और खाद्य उत्पादन करने वाले घरानों की आलोचना के रूप में हुई।[23] खाद्य-सम्प्रभुता कोई शैक्षिक या वैज्ञानिक सिद्धांत नहीं है, बल्कि यह किसानों के सामाजिक आंदोलन का परिणाम है। यह एक सवाल है जो आम किसानों, स्थानीय उत्पादकों और खेतिहर मज़दूरों ने उठाया है। यह एक चुनौती है जो वैश्विक नवउदारतावाद से जुड़े खाद्य-कार्टेल को सामाजिक आंदोलनों ने दी है। 'खाद्य-सम्प्रभुता राष्ट्र व उनके निवासियों द्वारा ख़ुद उपजाई गयी फ़सलों पर अधिकार के साथ जुड़ी हुई है। इतना ही नहीं, उसके अंतर्गत लोगों का खाद्य-प्रणाली पर स्वामित्व माना जाता है। खाद्य-प्रणाली के अंतर्गत बाज़ार, उत्पादन-प्रणाली, आहार-संस्कृति और पर्यावरण सभी आते हैं।'[24] प्रारम्भ से ही स्त्री-किसानों और स्त्री-खेतिहर मज़दूरों ने इस आंदोलन में खुल कर भाग लिया। खाद्य-सम्प्रभुता की सोच और सिद्धांत खाद्य-सुरक्षा के मुक़ाबले काफ़ी सरल, प्रवाही और सूक्ष्म हैं। इन्हें बहुत बारीक़ी से परिभाषित किया गया है। खाद्य-सम्प्रभुता के कुछ मौलिक घटक हैं, जैसे भोजन का अधिकार, सार्वजनिक दायरे में किसानों और खेतिहर मज़दूरों का महत्त्व स्थापित करना, स्थानीय उत्पाद व नियंत्रण के साथ-साथ पर्यावरणीय स्थिरता। हर जगह जेण्डर आयाम अहम है जिसे बार-बार स्त्रियों ने ज़मीनी स्तर पर उजागर किया है। भोजन का अधिकार बुनियादी स्तर पर सभी के लिए पौष्टिक और सुरक्षित, स्थानीय भोजन संबंधी आदतों का समर्थन करता है। भोजन को नवउदारतावाद के तहत खाद्य कार्टेल ने वैश्विक जिंस के रूप

घर के भीतर भोजन पहले पुरुष सदस्यों को ही परोसा जाता है। आख़िरकार वह पुरुष है और श्रम के मुताबिक़ खाना ही समाज का नियम। स्त्रियों द्वारा किया गया श्रम, बहाया गया पसीना शायद श्रम की परिभाषा में फ़िट नहीं बैठता। ज़ाहिरा तौर पर जैव विविधता (जल, जंगल, और ज़मीन) के संदर्भ में स्त्रियों व पुरुषों की पहुँच, उनके तरीक़ों व ज्ञान के विमर्श में ख़ासा अंतर देखा जा सकता है। खेतों में उपजी फ़सलों पर भी स्त्रियों की कोई हक़दारी नहीं है। बावजूद इसके कि बीज संरक्षण और मिट्टी की परख के मामले में महिलाओं का ज्ञान अद्भुत और काफ़ी सटीक बैठता है।

---

[22] 1993 में स्थापित ला वाया कॉम्पेसिना एक ऐसा संगठन है जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दुनिया भर के छोटे-मँझोले और भूमिहीन किसानों के साथ-साथ ग्रामीण स्त्रियों, युवकों, देशज लोगों और आव्रजकों की आवाज़ की नुमाइंदगी करता है. इन तबक़ों के बीच एकजुटता के आधार पर यह संगठन कॉरपोरेट हितों के लिए संचालित कृषि का विरोध करते हुए किसान-हितों पर आधारित खेती के पक्ष में काम करता है. इस आंदोलन ने 'खाद्य-सम्प्रभुता' अभिव्यक्ति ईज़ाद की है. देखें, *फ़ूड फ़र्स्ट न्यूज़ ऐंड व्यूज़,* 2005. इसके अभियानों के अंतर्गत बीजों और फ़सलों की रक्षा, स्त्रियों के साथ होने वाली हिंसा के ख़िलाफ़ लड़ना, किसानों के अधिकारों और कृषि सुधार के लिए वैश्विक स्तर पर काम प्रमुख रूप से आते है. देखें सतुर्निनो, (अप्रैल 2008) : 258-289.

[23] हान्ना विटमेन, ऐने डेस्मैराइज़ और नेटी वीब (2010), मेडेलाइन फ़ेयरबेर्न (2012).

[24] हान्ना विटमेन, ऐने डेस्मैराइज़ और नेटी वीब (2010) : 12.

स्रोत : फ़ील्ड, हसनपुर

में तब्दील कर दिया है। जबकि खाद्य-सम्प्रभुता इसे चुनौती देते हुए स्थानीय के महत्त्व को रेखांकित करती है। इसके अंतर्गत भोजन को एक मौलिक अधिकार के रूप में पुनः स्थापित करना ज़रूरी है। जेण्डर परिप्रेक्ष्य में भोजन का अधिकार सभी पुरुष, स्त्री, लड़के, लड़कियाँ, बच्चों आदि को दैनिक आहार का हक़ देता है।

खाद्य-सम्प्रभुता का दूसरा घटक किसानों, खेतिहर मज़दूरों, स्थानीय उत्पादकों के लिए महत्त्वपूर्ण है। खाद्य-सम्प्रभुता हमेशा ही खाद्य-प्रणाली के लिए बड़े, एकल और कार्टेल जैसे निगमों और कारख़ानों के बजाय स्थानीय लघु उद्योगों और खेती पर ज़ोर देती है। इस संदर्भ में स्त्रियों का योगदान वैश्विक दक्षिण[25] के कृषि और उत्पादन-क्षेत्र में भी देखा जा सकता है। इस खाद्य-सम्प्रभुता आंदोलन में स्त्रियों ने बार-बार माँग की है कि उनके काम को उत्पादन के दायरे में बाज़ार के लिए, परिवार के लिए, सामाजिक पटल पर जाना और पहचाना जाना चाहिए।

खाद्य-सम्प्रभुता हमेशा ही स्थानीय उत्पादन और स्थानीय स्वामित्व पर प्रकाश डालती है और इसका समर्थन करती है। उसकी मान्यता है कि आहार को हमेशा ही लोगों के जीवनाधार के रूप में देखा जाना चाहिए, न कि एक वस्तु के रूप में जिसे ख़रीदा और बेचा जाए और मुनाफ़ा कमाया जाए। यह आंदोलन नाफ़्टा, डब्ल्यूटीओ की नीतियों की कड़ी आलोचना करता है और स्थानीय नियंत्रण के लिए 'बीज सम्प्रभुता' और बीजों और पौधों, फ़सलों के जेनेटिक संसाधनों के निजीकरण के ख़िलाफ़ लड़ता है।[26] खाद्य-सम्प्रभुता के समर्थकों द्वारा स्थानीय ज्ञान और फ़सल उगाने और उन्हें सुरक्षित रखने के तरीक़ों को समझा और महत्त्व दिया जाता है। इस धरोहर को आगे की पीढ़ियों तक ले जाने की वकालत की जाती है। अंतर्राष्ट्रीय निगमों द्वारा फ़सलों और बीजों के निजीकरण, अत्यधिक खाद और कीटनाशकों के प्रयोग और फ़सलों, पौधों, बीजों के उत्परिवर्तन, जेनेटिकली मॉडिफ़ाइड

---

[25] आम तौर पर विश्व का उत्तर और दक्षिण भागों में विभाजन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तौर पर किया जाता है. वैश्विक उत्तर में जहाँ अमेरिका, कनाडा, यूरोप के पश्चिमी देश, एशिया के विकसित भाग और ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड (ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड भौगोलिक रूप में उत्तर में नहीं आते, लेकिन आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक लक्षण उन्हें उत्तरी देशों जैसा ही बनाते हैं) आते हैं. वहीं वैश्विक दक्षिण अफ़्रीका, लैटिन अमेरिका, विकासशील एशिया और मध्य पूर्व देशों से बना है. उत्तरी भाग ज़्यादा विकसित देशों से बना है. दक्षिण उत्तर के मुक़ाबले कम विकसित देशों से बना है. यह विभाजन कई सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक मानकों— जैसे ग़रीबी, शिक्षा, भोजन का स्तर, सरकार, आर्थिक स्थिरता, कुल उत्पादन आदि के आधार पर किया जाता है.

[26] जैक कोपेनबर्ग (2010).

क्रॉप (जीएम फ़सल) पर ज़ोर दिया जाता है। यह फ़सलों पर हानिकारक रसायन और विकिरण का प्रयोग करता है। खाद्य-सम्प्रभुता के समर्थक इसे रोकने का प्रयास करते हैं।

जेण्डर का विषय यहाँ फिर प्रमुख हो कर उभरता है क्योंकि स्त्रियों और बीजों, फ़सलों का सम्पर्क, उनका इतिहास सदियों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी ख़ामोशी से चला आ रहा है। बीजों के ज्ञान, उनके चयन, संरक्षण, बीजों के बोने से लेकर फ़सल की कटाई और बाद के खाद्यान्न का पूरा भार ही स्त्रियों के ज़िम्मे ज़्यादा होता है, लेकिन इसे कॉरपोरेट संस्कृति और पुरुष-प्रधान तंत्र में पहचाना ही नहीं जाता। मैंने अपने शोध-क्षेत्र, जो एक ग्रामीण और पिछड़ा हुआ इलाक़ा है, में पाया कि ग्रामीण स्त्रियों की बीजों, फ़सलों की समझ और उनके बोने और कटाई की योग्यता, मौसम का हाल आदि किसी भी तरह पुरुषों से कम नहीं है। यहाँ तक कि पुरुषों का काम बाज़ार तक सीमित रह जाता है, मगर स्त्रियों का काम स्थानीय बाज़ार, खेती, घर, राशन की दुकान, यानी हर कहीं मौजूद दिखाई देता है। यह वह कड़ी है जो पूरे समाज को, परिवार को, अर्थव्यवस्था और राज्य से जोड़े रखती है। उसके अस्तित्व को नकारा कैसे जा सकता है।

एक और महत्त्वपूर्ण तत्त्व है पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण करते हुए ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन को कम से कम करना। इसके लिए खेती में भी ऐसे परम्परागत तरीक़ों और तकनीक का मिश्रण करना है जिससे पैदावार भी हो, हानिकारक रसायनों का प्रयोग कम हो और ग्लोबल वार्मिंग में खेती से कम से कम बढ़ोतरी हो। कई अध्ययन बताते हैं कि अमेरिकी स्त्री-कृषक अधिकतर वहनीय क़िस्म के और ऑर्गेनिक खेती के तरीक़ों का प्रयोग करती हैं ताकि पर्यावरण भी संरक्षित रहे और फ़सल भी अच्छी और रसायन रहित हो।[27]

खाद्य-सम्प्रभुता का स्त्रीकरण : राज्य और लोगों की सहभागिता

जहाँ राष्ट्रीय खाद्य-सुरक्षा क़ानून खाद्य-सम्प्रभुता के बारे में मौन है, वहीं बिहार की राज्य सरकार द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रम स्त्री-किसान सशक्तीकरण परियोजना (एमकेएसपी) ने कृषि और खाद्यान्न संबंधित अन्य उपागमों के तहत स्त्रियों की सहभागिता और उनके हक़ को एक पहचान दी है। एक सुनियोजित और संरचनात्मक कार्यक्रम ने महिलाओं के हक़, उनके पहचान के इस संघर्ष को एक दिशा प्रदान की है। बिहार ग्रामीण जीविका कार्यक्रम (बीआरएलपी) के तहत एमकेएसपी के कार्यान्वयन ने स्त्री-कृषकों के स्थिति में सकारात्मक बदलाव आया है।

यह योजना मुख्य रूप से ज़मीनी स्तर पर कृषि आधारित तरीक़ों और घरेलू स्तर पर खाद्य-सुरक्षा को सुनिश्चित करती है। यह स्त्रियों और समाज को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों से अवगत कराती है और स्थानीय स्वशासन को बढ़ावा देती है। स्त्रियों की सहभागिता, उनके हक़ और सशक्तीकरण के लिए यह कृषक स्त्रियों को पैदावार बढ़ाने, उत्पादन क्षमता में बढ़ोतरी करने, बाज़ार तक पहुँच क़ायम करने और उचित दाम हासिल करने आदि में सहायता देती है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत जो स्त्रियाँ इसकी सदस्य हैं, वे अन्य स्त्रियों को इससे जोड़ने के लिए 'कम्युनिटी रिसोर्स पर्सन' की तरह काम करती हैं। वे अन्य स्त्रियों को इससे जुड़ने, बीजों के संरक्षण, पैदावार के रख-रखाव और बाज़ार भाव की सही जानकारी देने में मदद करती हैं।

रघुनाथपुर और हसनपुर में इस संस्था की ग्राम-इकाई के लोगों से बात करके पता चला कि ग्रामीण स्त्रियों के आत्मनिर्भर होने के लिए इसने काफ़ी अवसर मुहैया कराए हैं। स्त्रियाँ अब अशिक्षा और ग़रीबी को पार कर कृषि और कुटीर उद्योग से संबंधित अन्य कार्य भी सीख रही हैं। कम्युनिटी रिसोर्स पर्सन लक्ष्मी ने बताया, 'अब मेरे पति खेती के लिए मेरी सलाह लेते हैं और हम दोनों मिल

---

[27] ए. ट्रॉजर, सी. साक्स, एम. बैरबेरचेक, के. ब्रेज़र, एन.ई. कीरनैन (2009).

कर खेती करते हैं। वे मुझे समान रूप से ज़मीन का साझेदार समझते हुए मेरे हक़ को भी मानते हैं। हम अब पहले से कहीं ज़्यादा आत्मनिर्भर हैं और ख़ुद पर भरोसा करते हैं। खाने के लिए भी हम अब ख़ुद को सुरक्षित महसूस करते हैं। अब हम बड़ी ही आसानी से राशन की दुकान जाते हैं, अपना राशन लेते हैं, बाज़ार में जा कर सही दाम पर बीज लेते हैं, अनाज बेचते हैं, हमें डर नहीं लगता की कोई हमें ठग लेगा क्योंकि अब हमको पता है कि क्या भाव है। हम लोग रात में अब भूखे पेट नहीं सोते।' सगुनिया देवी और बिजली देवी ने भी एक स्वर में बोला, 'हम आगे आएँगे तो हमारा परिवार भी आगे बढ़ेगा। हमारा बच्चा भी स्कूल जाएगा, अच्छा पढ़ेगा, अच्छा खाएगा।'

फ़ील्ड वर्क के दौरान हुए तीन मुख्य अनुभवों को मैं इस प्रकार पेश करना पसंद करूँगी :

क. सामूहिक खेती को ज़्यादा बढ़ावा : सामूहिक खेती से ज़मीन लीज़ पर लेने में और कृषि संबंधी समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिलती है। सामूहिक खेती से आपसी सीख (पीयर लर्निंग) भी बढ़ती है और श्रम विभाजन, विशेषज्ञता में भी आसानी होती है। एक ही समय पर अनेक प्रकार की फ़सलों को एक ही साथ उगाया जा सकता है। सामूहिक खेती से लागत में भी गिरावट होती है, नुक़सान कम होता है। इस तरह न सिर्फ़ घरेलू ज़रूरतों को, बल्कि रोज़गार और आय के स्रोत को भी बढ़ावा मिलता है।

ख. श्रम लागत में कटौती : महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी (2005) से इस तरह के कार्यक्रमों को सहायता मिली है। ज़मीनी विकास, वृक्षारोपण, जल संरक्षण आदि कामों में भी स्त्रियों की समान हिस्सेदारी सुनिश्चित हुई है।

ग. संस्थागत संरचनात्मक विधि : इन कार्यक्रमों के द्वारा किसान क्रेडिट कार्ड, ज्वाइंट लायबिलिटी समूह जैसी कई आधारभूत योजनाएँ शुरू की गयी है जिन्हें नाबार्ड के दिशानिर्देशों की तर्ज़ पर बनाया गया है और उन्हें आर्थिक सहायता भी प्राप्त है।

ये कुछ ऐसे प्रयास हैं जहाँ स्त्रियों की सहभागिता, उनकी हक़दारी, उनकी आवाज़ को एक पहचान मिल रही है। ज़रूरत इस बात की है कि इसका और विस्तार किया जाए। स्त्रियों की पहचान किसी की बेटी, किसी की बीवी, किसी की माँ से कहीं ज़्यादा एक किसान के तौर पर होनी है। जो अन्न वह उगा रही है उस पर पहला हक़ उसका होना चाहिए।

बीना अग्रवाल[28] का विचार है कि भूमि-सुधार और भूमि से जुड़े प्रश्नों का स्त्रीकरण ज़रूरी है। स्त्री भूमि पर अपने हक़ को राज्य, परिवार और बाज़ार द्वारा प्राप्त कर सकती है। यहाँ परिवार और बाज़ार पर ज़्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है क्योंकि भारत में ज़्यादातर कृषि योग्य भूमि निजी सम्पति है। ऐसे में समूह में राज्य द्वारा कम ब्याज पर ऋण या सामूहिक खेती और एमकेएसपी और जीविका जैसे कार्यक्रमों के बल पर भूमि-सुधार, सामुदायिक सहभागिता और सामूहिक खेती द्वारा ग्रामीण और ग़रीब स्त्री-किसानों को भी एक नयी, परिवर्तनकारी, प्रगतिशील राह मिलेगी।

वंदना शिवा[29] की मान्यता है कि खाद्य-सम्प्रभुता या अन्न-स्वराज एक अधिकार है। यह पौष्टिक और विविध अन्न को उगाने की आज़ादी है। यह सभी लोगों को सुरक्षित, पौष्टिक, पर्याप्त एवं वहनीय भोजन का समान अधिकार देता है। स्त्रियों का योगदान और सहभागिता जैव विविधता, सांस्कृतिक विविधता और खाद्य-सुरक्षा में अग्रणी है। स्त्रियों के इन आंदोलनों को एक पहचान मिलनी चाहिए ताकि स्थानीय, ग्रामीण और ज़मीनी आवाज़ों को बुलंद करने का एक मंच मिले। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्त्रियों का न सिर्फ़ अन्न, बल्कि ज़मीन, पानी और जैव-विविधता पर भी हक़ सुनिश्चित किया जा सके और अन्न-स्वराज की स्थापना हो सके। हमारी कोशिश होनी चाहिए कि हम जेनेटिक

---

[28] बीना अग्रवाल (2003).

[29] वंदना शिवा (2013).

इंजीनियरिंग, ग्लोबल वार्मिंग, वैश्वीकरण के दुष्प्रभावों से अपने अन्न को कैसे बचाएँ; स्थानीय और देशज तरीक़ों से बीजों को कैसे संरक्षित किया जा सकता है; बायो–पायरेसी से इस पुरातन ज्ञान को किस प्रकार सुरक्षित और विकसित किया जा सकता है। बीजों के संरक्षण और अन्न की सहभागिता में स्त्रियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक है।

V
नारीवादी खाद्य–न्याय सिद्धांत का अवलोकन

खाद्य–न्याय सिद्धांत नारीवादी खाद्य–सुरक्षा और नारीवादी खाद्य–सम्प्रभुता के सम्मिश्रण से बना है। वह इस परम्परागत ढाँचे को नये सिरे से गढ़ने की बात करता है। राज पटेल[30] मानते हैं कि नारीवादी विचारधारा का उपयोग हमें खाद्य–सम्प्रभुता की प्राथमिकताओं के संरचना में करना चाहिए। वे आगे सुझाव देते हैं कि खाद्य–सम्प्रभुता को गहन और चुभने वाली असमानताओं, जो जातिवाद, पितृसत्ता और वर्ग विशेष के आधिपत्य से पैदा होती हैं, का दमन करना चाहिए। मैं कुछ सम्भावनाओं का उल्लेख यहाँ कर रही हूँ जिनके बारे में सोचा, समझा और शोध किया जा रहा है। समाजशास्त्री, समाजसेवी, सामाजिक कार्यकर्ता, अर्थशास्त्री, नीति विशेषज्ञ आदि इन सम्भावनाओं को साकार करने के प्रयास में लगे हुए हैं। ये सम्भावनाएँ सिद्धांतों से ले कर और कार्यान्वयन तक के ढाँचे में परिवर्तन और उनमें कुछ नये तत्त्वों के समावेश तक है। इन सम्भावनाओं का दायरा बड़ा और प्रभाव विश्वव्यापी है।

स्त्रियों और बीजों, फ़सलों का सम्पर्क, उनका इतिहास सदियों से पीढ़ी–दर–पीढ़ी ख़ामोशी से चला आ रहा है। ... स्त्रियों की बीजों, फ़सलों की समझ और उनके बोने और कटाई की योग्यता, मौसम का हाल आदि किसी भी तरह पुरुषों से कम नहीं है। यहाँ तक कि पुरुषों का काम बाज़ार तक सीमित रह जाता है, मगर स्त्रियों का काम स्थानीय बाज़ार, खेती, घर, राशन की दुकान, यानी हर कहीं मौजूद दिखाई देता है।

1. ज़रूरत है परम्परागत घरेलू मॉडल्स और उनसे जुड़ी भोजन संबंधी असमानताओं को फिर से सोचने और परिभाषित करने की। अररिया क्षेत्र में भी स्त्रियों को घर में, फ़सल उत्पादन में, प्रावधानों में, हक़दारी में, निर्णय के मामले में न के बराबर जगह दी जाती है। नये तरह की नीतियों के तहत अब उनकी पात्रता की पहचान घर के मुखिया के तौर पर हो रही है। जीविका, एमकेएसपी जैसे कार्यक्रम ने भी स्त्रियों को निर्भरता का एक ज़रिया दिया है।
2. सोशल रीप्रोडक्शन से जुड़े आहार संबंधी कार्यों को महत्त्व देना : एक समस्या यहाँ यह है कि स्त्रियों द्वारा शिशु की देखभाल से ले कर भोजन बनाने, फ़सल उगाने तक के कामों को किस तरह महत्त्व दिया जाए ताकि परम्परागत रूढ़िवादी श्रम–विभाजन को नये रूप में परिभाषित किया जा सके।
3. अतिव्यापी और संघर्षरत जेण्डर, जाति, वर्ण, श्रेणी, योग्यता, धर्म, राष्ट्रीयता आदि के आयामों की पहचान करना जो कि आहार संबंधी असमानताओं को बढ़ाती है। साथ ही दक्षिण के खाद्य–सम्प्रभुता के सिद्धांतों और कार्यप्रणाली का उत्तरी खाद्य –या मॉडल के समर्थकों के बीच ज़्यादा आदान–प्रदान और वार्तालाप होना चाहिए।

---

[30] राज पटेल (2010)

4. मज़दूर-किसानों के हक़, उनके अधिकार, स्त्री-श्रमिकों की साझेदारी को और मज़बूत करना चाहिए। एक समान आय और उत्पादन के लिए अन्य सुविधाएँ स्त्री और पुरुष सब को समान रूप से मिलनी चाहिए।
5. आहार की गुणवत्ता और विविधता पर ध्यान देने की आवश्यकता है।
6. नारीवादी पॉलिटिकल इकॉलॅजी का उपयोग करने की आवश्यकता है ताकि पर्यावरण और खेती दोनों ही की वहनीयता बनी रहे और जलवायु परिवर्तन से जूझने की समझ अपनाई जा सके।
7. नारीवादी विचारधाराओं का विस्तार खेती, आहार और इनसे जुड़े सामाजिक, आर्थिक संस्थानों में होना चाहिए ताकि इनमें भी सहिष्णुता और दूरदर्शिता आये और स्त्री, विकास और जेण्डर के मुद्दे मौलिक रूप से मुख्यधारा का हिस्सा बन सकें।
8. आख़िर में भूमि-सुधार और पुनः वितरण की ज़रूरत को समझना, आँकना और समयानुसार निष्पादित करना चाहिए जिसमें स्त्रियों की हिस्सेदारी हो सके।

खाद्य-सम्प्रभुता, खाद्य-सुरक्षा और वहनीय जैविक विविधता बनाए रखने के लिए यह अब ज़रूरी है कि सामूहिक सहभागिता और स्त्रियों के हक़ को पहचानें। नारीवादी विचारधारा का विस्तार अकादमिक दायरे से बाहर ज़मीन पर भी होना चाहिए ताकि इन मुद्दों को व्यापक पहचान मिले सके। आज समाज को एक नये प्रगतिशील जेण्डरमूलक विमर्श की ज़रूरत है जहाँ ज्ञान, पहचान, हिस्सेदारी को सही मायनों में परिभाषित, नियोजित और साझा किया जा सके। स्त्रियों का हक़ है, अन्न को सुरक्षित और साझा करने का क्योंकि उनके द्वारा उगाया गया अन्न उनका ही है। जब हम इस विचार को सभी के साथ बाँटते हुए उसे अमल में लाएँगे, तो समाज, राज्य और परिवार स्त्रियों को वह पहचान, आज़ादी, अधिकार दे सकेंगे जिससे एक नवीन और रैडिकल खाद्य-सम्प्रभुता की स्थापना हो सके।

संदर्भ

आर.डी. सेम्बा, एस.दी पी, के. सुन, म. सारी, एन.अख़्तर और एम.डब्ल्यू. ब्लोएम (2008), 'इफ़ेक्ट्स ऑफ़ पैरेंटल फ़ॉर्मल एजुकेशन ऑन रिस्क ऑफ़ चाइल्ड स्टंटिंग इन इंडोनेशिया ऐंड बांग्लादेश : अ क्रॉस सेक्शनअल स्टडी', द *लैंसेट* 371 (9609).

ऑनलाइन उपलब्ध : http://www.fao.org/DOCREP/003/W3613E/W3613E00.HTM.

ओलिविएर एकर और क्लेमेन्स ब्रेइसिंगेर (2012), 'द फ़ूड सिक्युरिटी : अ न्यू कंसेपचुअल फ्रेमवर्क', *आईएफ़पीआरआई,* वाशिंगटन डीसी, पेपर 01166.

इ. कैनेडी और पी. पीटर्स (1992), 'हाउसहोल्ड फ़ूड सिक्यूरिटी ऐंड चाइल्ड न्युट्रीशन : द इंटरेक्शन ऑफ़ इनकम ऐंड जेण्डर ऑफ़ हाउसहोल्ड हेड' *वर्ल्ड डिवेलपमेंट,* खण्ड 20, अंक 8.

ए. ट्रॉजर, सी. साक्स, एम. बैरबेरचेक, के. ब्रेज़र, एन.ई. कीरनैन (2009), 'आवर मार्केट्स इज़ आवर कम्युनिटी : वुमॅन फार्मर्स ऐंड सिविक एग्रीकल्चर इन पेनसिलवेनिया, यू.स,ए', *एग्रीकल्चर, फ़ूड ऐंड ह्यूमन वैल्यू,* खण्ड 26, अंक 3.

एफ़एओ (फ़ूड ऐंड एग्रीकल्चरल आर्गनाईज़ेशन) (1996), रोम डिक्लेरेशन ऑन वर्ल्ड फ़ूड सिक्यूरिटी ऐंड वर्ल्ड फ़ूड सम्मिट प्लान ऑफ़ एक्शन.

एफ़एओ (2011), *द स्टेट ऑफ़ फ़ूड ऐंड एग्रीकल्चर : वुमॅन इन एग्रीकल्चर : क्लोज़िंग द जेण्डर गैप इन डिवेलपमेंट,* रोम, एफ़एओ.

जे.आर. बहरमन और ऐ.बी. देओलालिकर (1990), 'द इंट्राहाउसहोल्ड डिमांड फॉर न्यूट्रिएंट्स इन रूरल साउथ इण्डिया : इण्डीविजुअल एस्टीमेट्स, फ़िक्स्ड इफ़ेक्ट्स, ऐंड परमानेंट इनकम', *जर्नल ऑफ़ ह्यूमन रिसोर्सेज़,* खण्ड 15, अंक 4.

जे.आर. बहरमनंद और बी.एल. वोल्फ़े (1984), 'मोर एविडेंस ऑन न्युट्रीशन डिमांड : इनकम सीम्स ओवररेटेड ऐंड

वुमेन'स स्कूलिंग अण्डर एम्फ़ेसाइज़्ड', *जर्नल ऑफ़ डिवेलपमेंट इकॉनॉमिक्स,* खण्ड 14, अंक 1.

डी. थॉमस (1994), 'लाइक फ़ादर, लाइक सन; लाइक मदर, लाइक डॉटर : पैरेंटल रिसोर्स ऐंड चाइल्ड हाइट', *जर्नल ऑफ़ ह्यूमन रिसोर्सेज़,* खण्ड 29, अंक 4.

जैक क्लोपेनबर्ग (2010), 'सीड सोवरेनिटी : द प्रॉमिस ऑफ़ ओपन सोर्स बायोलॉजी', हान्ना विटमेन, ऐने डेस्मैराइज़ और नेटी वीब (सं.) *फ़ूड सॉवरेनिटी : रीकनेक्टिंग फ़ूड, नेचर ऐंड कम्युनिटी,* फ़र्नवुड पब्लिशिंग, हैलिफ़ैक्स : 152-167.

पी. ग्लेव्वे (1999), 'व्हाई डज़ मदर्ज़ स्कूलिंग रेज़ चाइल्ड हेल्थ इन डिवेलपिंग कंट्रीज़? एविडेंस फ्रॉम मोरक्को', *जर्नल ऑफ़ हम रिसोर्सेज़,* खण्ड 34, अंक 1.

बीना अग्रवाल (2003) 'जेण्डर ऐंड लैंड राइट्स : एक्सप्लोरिंग न्यू प्रोस्पेक्ट्स वाया द स्टेट, फ़ैमिली ऐंड मार्किट', *जर्नल ऑफ़ एग्रेरियन चेंज',* खण्ड 3, अंक 1 एवं 2, जनवरी-अप्रैल.

मेडेलाइन फ़ेयरबेइर्न (2012), 'फ्रेमिंग रेजिस्टेंस : इंटरनैशनल फ़ूड रेजिम ऐंड द रूट्स ऑफ़ फ़ूड सॉवरेनिटी', हान्ना विटमेन, ऐने डेस्मैराइज़ और नेटी वीब (सं.) *फ़ूड सोवरेनिटी : रीकनेक्टिंग फ़ूड, नेचर ऐंड कम्युनिटी,* फ़र्नवुड पब्लिशिंग, हैलिफ़ैक्स.

नीना लिके (2011), 'इंटरसेक्शनल एनालिसिस : ब्लैक बॉक्स ऑर यूज़फुल क्रिटिकल फ़ेमिनिस्ट थिंकिंग टेक्नोलॉजी', हेल्मा लुत्ज़, मारिया टेरेसा हर्रेरा और हेर्रारा और लिंडा सुपिक (सं.), *फ़्रेमिंग इंटरसेक्शनलिटी : डिबेट्स ऑन अ मल्टीफेसिटेड कांसेप्ट इन जेण्डर स्टडीज़,* एश्गेट : फ़र्नहैम, वीटी.

नैंसी फ्रेज़र (2009), 'फ़ेमिनिज़म, कैपिटलिज़म ऐंड द कनिंग ऑफ़ हिस्ट्री', *न्यू लेफ़्ट रिव्यू* 56, मार्च-अप्रैल.

राज पटेल (2010), 'व्हाट डज़ फूड सोवरेनिटी लुक लाइक', हान्ना विटमेन, ऐने डेस्मैराइज़ और नेटी वीब (सं.) *फ़ूड सोवरेनिटी : रीकनेक्टिंग फ़ूड, नेचर ऐंड कम्युनिटी,* फ़र्नवुड पब्लिशिंग, हैलिफ़ैक्स.

लिन फ़िलिप्स, और सैली कोल (2009), 'फ़ेमिनिस्ट फ़्लोज़, फ़ेमिनिस्ट फॉल्टलाइंस : वुमंस मशीनरीज़ ऐंड वुमंस मूवमेंट इन लैटिन अमेरिका', *साइंस : जर्नल ऑफ़ वुमॅन इन कल्चर ऐंड सोसाइटी,* खण्ड 35, अंक 1.

वंदना शिवा (2013), *नो टू जीएमओ बनानज़ : प्रोटेक्ट इंडीजेनस बायोडायवर्सिटी ऐंड नॉलेज,* नवदान्य.

वृषाली पाटिल (2013), 'फ़्रॉम पैट्रियार्की टू इंटरसेक्शनअलिटी : अ ट्रांसनेशनल फ़ेमिनिस्ट असेसमेंट ऑफ़ हाउ फ़ॉर वी हैव रियली कम', *साइंस : जर्नल ऑफ़ वुमेन इन कल्चर ऐंड सोसाइटी, खण्ड* 38, अंक 4.

सुमी चो, किम्बरले विलियम्स क्रेंशा और लेस्ली मैक्कॉल (2013), 'टुवड्र्स अ फ़ील्ड ऑफ़ इंटरसेक्शनालिटी स्टडीज़ : थियरी', *एप्लीकेशंस ऐंड प्रैक्सिस,* खण्ड 38, अंक 3.

सैतुरनिनो बोरोज़ (2008), 'ला वाया कॉम्पेसिना ऐंड इट्स ग्लोबल कैंपेन फ़ॉर एग्रेरियन रिफ़ॉम्ज़', सैतुरनिनो बोरोज़, मार्क एल्डरमैन और क्रिस्टोबल के (सं.), *ट्रांसनैशनल एग्रेरियन मूवमेंट्ज़ कंफ्रंटिंग ग्लोबलाइज़ेशन.*

हान्ना विटमेन, ऐने डेस्मैराइज़ और नेटी वीब (2012) 'द ओरिजिंस ऐंड पोटेंशियल ऑफ़ फ़ूड सोवरेनिटी', हान्ना विटमेन, ऐने डेस्मैराइज़ और नेटी वीब (सं.) *फ़ूड सोवरेनिटी : रीकनेक्टिंग फ़ूड, नेचर ऐंड कम्युनिटी,* फ़र्नवुड पब्लिशिंग, हैलिफ़ैक्स.